बुधवार, 25 मई 2016

लोकमत समाचार

गुणात्मक शिक्षा के मानदंड

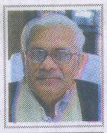

गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

आजकल भारत में उच्च शिक्षा की कमियों को दूर कर उसमें गुणवत्ता लाने की चर्चा और उसके लिए परामर्श बड़े जोरों पर हैं. इसके लिए अनेक स्तरों पर तरह-तरह की कवायद की जा रही है. परंतु इस प्रयास के लिए अपनाए गए संदर्भ और मानक हमारे अपने नहीं हैं. गुणवत्ता के सरोकार के बारे में हमारा ध्यान उन अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों की ओर ही जा रहा है जो उनके अपने देश काल के संदर्भ में ठीक हो सकते हैं, पर वे हर जगह ठीक हों यह जरूरी नहीं है. पर लगभग उन्हीं को पृष्ठभूमि में रख कर गुणवत्ता की पैमाइश की जा रही है और उनके मानकों पर संतुष्ट होने पर शिक्षण संस्थाओं को ए/बी/सी/डी ग्रेड दी जा रही है. प्राध्यापकों की पदोन्नति में एपीआई की गणना हो रही है और इसके चलते आजकल शिक्षा संस्थानों में हम शोध, संगोष्ठी और प्रकाशन की तत्वहीन मारामारी का अद्‌भुत नजारा देखने को बाध्य हो रहे हैं. गुणहीन शोध पत्रिकाओं की भीड़ लग रही है और शोध में नकल और चोरी की घटनाएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं.

शिक्षा के परिसर में आज पढ़ने आने वाला युवा 'विद्यार्थी' नहीं बल्कि अच्छे 'परीक्षार्थी' बनने के लिए ही यत्नशील रहता है. उसका सफलता यानी अच्छे अंक पाने पर जोर निरंतर बढ़ता जा रहा है. बढ़ती ट्यूशन या कोचिंग की जरूरत और उसकी बढ़ती व्यावसायिक गिरफ्त को देखने से यही लगता है कि प्रचलित शिक्षा अधूरी, दोषपूर्ण और अपर्याप्त है. इसलिए सही अर्थों में व्यक्तित्व और कुशलता की वृद्धि की दृष्टि से अव्यावहारिक है.

हम देख रहे हैं कि उच्च शिक्षा किस तरह संचालित हो रही है और किस मुकाम पर पहुंच रही है, यह किसी भी तरह संतोषजनक नहीं है. हम अपने विश्वविद्यालयों की तुलना हार्वर्ड, ऑक्सफोर्ड और एमआईटी जैसी उत्तरी अमेरिकी संस्थाओं से करना चाह रहे हैं. उनकी तर्ज पर जांच-परख करने पर हमारे श्रेष्ठ विश्वविद्यालय या उच्च शिक्षा के अन्य संस्थान फिसड्डी ही साबित होते हैं और हम अंतर्राष्ट्रीय रैंकिंग की सूची में कहीं ठहरते ही नहीं हैं. सूची में ऊपर आने के लिए जो निकष तय किए गए हैं वे कुछ सार्वभौम पैमानों को हमारे सामने रखते हैं मसलन- छात्र संख्या, कक्षा में छात्रों और अध्यापक के बीच का अनुपात, संस्था की प्रतिष्ठा, विदेशों के साथ संबंध, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशनों की संख्या इत्यादि. पर यदि गौर से देखें तो इनमें कई निकष हमारे भारतीय समाज के लिए असामान्य हैं और प्रासंगिकता की दृष्टि से एक हद तक संदिग्ध भी.

आज उच्च शिक्षा में ज्ञान की राजनीति की बड़ी प्रखर भूमिका है. विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिशानिर्देश देते हैं जिनके अनुसार नीतिनिर्धारण किया जाता है. कौन से विषय आगे बढ़ेंगे और उन्हें किन मुद्दों पर शोध के लिए क्या सहायता मिलेगी, यह सब उन्हीं नीतियों पर निर्भर करता है, न कि स्थानीय दशाओं या क्षमताओं के ऊपर. स्वायत्तता कितनी दी जाए, यह हमारा अपना निर्णय नहीं होता है. संस्थाओं को स्वायत्तता प्राप्त नहीं है. उनके ऊपर तमाम बंधन-दर-बंधन की ऐसी झड़ी लगी है कि विश्वविद्यालय हर बात के लिए मुंह देखता है और सरकारी आदेश की बाट जोहता है. सरकार का तंत्र हावी है और नौकरशाही का प्रभाव शैक्षिक प्रशासन को दूषित और बाधित कर रहा है. ऐसे में हर चीज अपनी जगह स्थिर है.

> गुणात्मक शिक्षा की यह स्वाभाविक अपेक्षा होती है कि उसमें छात्र और अध्यापक दोनों ही ज्ञान की प्रक्रिया के साथ गहराई से जुड़ें.

आज अनुकरण की इच्छा बलवती है और हम बिना सोचे-समझे जो कुछ भी कहीं भिन्न दिखता है 'उनके पास है तो हमारे पास क्यों न हो' इस तर्क का अनुसरण करते हुए अपने को पश्चिमी विश्वविद्यालयों का क्लोन बनाते जा रहे हैं. प्रतिस्पर्धा जीवन की धुरी बनाती जा रही है और सभी दौड़ में शामिल हैं. इस प्रक्रिया में पूंजीवाद ही एक मात्र मार्गदर्शक है. विश्वविद्यालय भी औद्योगिक संस्थाओं की तर्ज पर चलाए जाने लगे हैं. ब्यूरोक्रेसी या नौकरशाही उसके पूरे परिवेश पर हावी हैं. शिक्षा संस्थाओं का संचालन औद्योगिक संगठन या घरानों के तर्ज पर हो रहा है. इस मॉडल का शिक्षा की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है. भारतीय संविधान की पूर्वपीठिका में न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की चर्चा की जाती है. इसमें जिस मनुष्य की संकल्पना की गई है वह उच्च शिक्षा केन्द्रों से एक भिन्न तरह के मानस के निर्माण की अपेक्षा करता है. पर आज जिस तरह क्वालिटी को क्वान्टिटी में बदलने की कोशिश हो रही उससे कई खतरे पैदा हो रहे हैं जिससे गुणवत्ता को नुकसान पहुंच रहा है. सवाल यह भी है कि यदि वैश्विक ही महत्वपूर्ण है तो स्थानीय का क्या होगा?

शिक्षा एकरूपी नहीं होनी चाहिए. सीखने वाला संगठन ऐसा हो जो स्वतंत्रता/स्वायत्तता पर बल दे. उसे सुनम्य होना चाहिए और बदलाव के लिए तत्परता हो. तभी रचनाशीलता आ सकेगी. उसे 'रिजिड' नहीं होना चाहिए. शैक्षिक संस्थान वस्तु को नहीं पैदा करते वे मनुष्य रचते हैं. और ज्ञान के द्वारा उसका परिष्कार और परिमार्जन करते हैं. हमें विचार करना चाहिए कि उच्च शिक्षा का उद्देश्य क्या है? हम किस तरह के मनुष्य की परिकल्पना कर रहे हैं. हर शिक्षा संस्था अपनी शक्ति और विशिष्टता के साथ उन क्षेत्रों को रेखांकित करे जिनमें प्रामाणिक रूप से उसके द्वारा योगदान संभव है. उसका उद्यम यदि उस क्षेत्र विशेष में केंद्रित हो तो बात बन सकती है. मोटे तौर पर कह सकते हैं कि गुणात्मक शिक्षा की यह स्वाभाविक अपेक्षा होती है कि उसमें छात्र और अध्यापक दोनों ही ज्ञान की प्रक्रिया के साथ गहराई से जुड़ें. गुणवत्ता की तलाश के लिए दरकार है आंतरिक पुनराविष्कार की. ■■